फौलाद का आकाश

मोहन राकेश

हिन्दी ADDA

फौलाद का आकाश

https://www.hindiadda.com/phaulaad-ka-akash/

ड्राइंग-रूम काफ़ी खुला और बड़ा था, अकेले बैठने के लिए बहुत ही बड़ा। रात को वहाँ से गुज़रकर पैंट्री में जाना पड़ता तो मीरा को अपने अन्दर एक डर-सा महसूस होता। ड्राइंग-रूम का ख़ालीपन एक तस्वीर की तरह लगता,दीवारों के चौखटे में जड़ी तस्वीर की तरह। बेडरूम के अलावा और सब कमरों की बत्तियाँ बुझाकर जब शंकर अपने क्वार्टर में सोने चला जाता, तो किसी-न-किसी काम से रोज़ उसे उधर जाना पड़ता था। कभी अपनी ज़रूरत से, कभी रवि के कुछ माँगने पर। बिजली के बटन पर हाथ रखने तक गद्दों और कुर्सियों की आकृतियाँ उसे अँधेरे में ऊँघती-सी जान पड़तीं। कई बार वह बटन दबाने का हौसला न करती-कि कहीं ऊँघती आकृतियों की बत्ती जल जाने से उलझन न हो।

रवि रात को देर तक काम करता रहता था। ढेर-ढेर काग़ज़ आँकड़ों और ग्रा$फों से भरे रहते थे। उसके हाथ इस तरह हिलते रहते थे जैसे काम करने के लिए उसे ज़रा भी सोचना न पड़ता हो। काग़ज़ पर उसकी क़लम फिसलती जाती थी, फिसलती जाती थी। फिर एकाएक वह काग़ज़ सरकाकर कुर्सी की पीठ से टेक लगा लेता और दायें हाथ को बायें हाथ से दबाने लगता। तब भी मीरा को लगता कि दिमाग़ उसका नहीं थका, सिर्फ़ हाथ थक जाने से उसे मजबूरन रुक जाना पड़ा है। चीखने की-सी हल्की आवाज़ के साथ चिप्स के फर्श पर कुर्सी पीछे को सरकती और रवि उठता हुआ कहता, "तो तुम अभी तक जाग रही हो? कितनी बार तुमसे कहा है कि वक़्त पर सो जाया करो।"

मीरा मुस्कराती हुई उठती और उसे गिलास में पानी दे देती। वह जानती थी कि रवि जान-बूझकर रोज़ तकल्लुफ़ में यह बात कहता है। उसके काम ख़त्म करने तक अगर वह सचमुच सो जाए, तो रवि को झुँझलाहट होती है। ऐसे में वह सुराही से पानी लेने में भी इतनी आवाज़ करता है कि ख़ामख़ाह दूसरे की नींद खुल जाए। या फिर भारी क़दमों से कमरे में चहलक़दमी करने लगता है। या अलमारी से मोटी-मोटी किताबें निकालकर धप्-धप् उनकी धूल झाडऩे लगता है। चैन उसे तभी मिलता है जब किसी-न-किसी आवाज़ से वह अचानक जाग जाती है। उस पर भी वह तकल्लुफ़ छोड़ता नहीं। कहता है, "अरे तुम ज़रा-सी आवाज़ से जाग गयीं? बहुत कच्ची नींद है तुम्हारी।"

बिस्तर में लेट जाने के बाद अचानक रवि को अपनी किसी फाइल का ध्यान हो आता, जिसे वह बाहर बरामदे में भूल आया होता। या हल्की भूख का एहसास होता। या अपनी मल्टी विटामिन टिकिया की याद हो आती। कहता वह बहुत उलझे ढंग से,

"देखो, हो सके तो..." या, "देखो, कर सको तो..." दस साल साथ रहकर मीरा जान चुकी थी कि इस तरह बात उसकी मर्ज़ी पर नहीं छोड़ी जाती, सिर्फ़ आदेश को तकल्लुफ़ का जामा पहना दिया जाता है। वह चुपचाप उठती, ड्राइंग-रूम पार करके जाती और जो कुछ माँगा गया होता, लेकर लौट आती। आदेश का पालन हो चुकने पर रवि के मन में न जाने कैसी कुंठा जाग आती कि वह उसे कसकर बाँहों में भरने का प्रयत्न करता। पूछने लगता, "मेरे साथ अपनी ज़िन्दगी तुम्हें बहुत रू$खी लगती है न?" कहकर किसी भी उत्तर की प्रतीक्षा या अपेक्षा वह न करता-कुछ भी बोलने से पहले उसके होंठों को अपने होंठों से भींच देता।

फिर फुसफुसाकर कहता, "मैं बहुत बुरा हूँ,हूँ न?" इस पर भी उसे किसी उत्तर की आशा न रहती। वह अपने-आप सवाल पर सवाल किये जाता। "तुम्हें मैं बहुत दुखी करता हूँ, नहीं? पर अब तो तुम्हें सहने की आदत हो गयी है, नहीं?" साथ ही उसके हाथ उसके शरीर की गोलाइयों को मसलने लगते, उसके दाँत जगह-जगह उसके माँस को काटने लगते। "साथ तुम यह भी जानती हो कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ, कितना ज़्यादा प्यार करता हूँ, नहीं?" और मंज़िल-दर-मंज़िल शारीरिक निकटता की हदें पार होती जातीं। आख़िर जब पसीना-पसीना होकर वह उससे अलग होता, तो भी मीरा को यही लगता जैसे अब भी लिखते-लिखते हाथ थक जाने से उसने काग़ज़ परे हटा दिये हों और इसके बाद अब पानी का गिलास माँगने जा रहा हो। वह अनायास ही उसे पानी देने के लिए उठना चाहती, पर तब तक रवि के खर्राटे भरने की आवाज़ सुनाई देने लगती है। वह चुपचाप कुछ देर उसके माथे के ज़ख्म को और अधपके बिखरे बालों को देखती रहती, फिर उसाँस भरकर सिर तकिये पर डाल लेती। कुछ देर बाद उठकर गुसलख़ाने में जाती और वापस आकर फिर उसी तरह लेटी रहती। बाहर कच्ची सडक़ से कोई टूटी साइकिल खरड़-खरड़ की आवाज़ करती निकल जाती।

बीच रात में अचानक नींद खुलने पर मीरा को लगा कि वह किसी ऐसी साइकिल की आवाज़ सुनकर ही जागी है। सुबह-सुबह दूधवाले बड़े-बड़े पीपे साइकिलों से लटकाए उधर से गुज़रकर जाया करते थे। पर सुबह अभी हुई नहीं थी, रोशनदान के शीशों की स्याही अभी ज़रा भी नहीं बुझी थी। बाहर झींगुरों की तेज़ आवाज़ सुनाई दे रही थी-जैसे कि एक तेज़ च$र्खी लगातार घूम रही हो। मीरा को वह आवाज़ उस वक़्त रोज़ से ज़्यादा ऊँची, ज़्यादा तेज़, ज़्यादा चुभती हुई लगी। खिड़की के बाहर पेड़ों के पीछे जितना आकाश झुक आया था, उसमें एक सितारा बहुत तेज़ चमक रहा था। इतना तेज़ कि वह सितारा नहीं लगता था। मीरा बिस्तर से उठी कि खिड़की बन्द कर दे-कि हवा और झींगुरों की आवाज़ उससे कुछ कम हो जाए। पर खिड़की के पास आयी तो देर

तक वहीं रुकी रही। फौलादी जाली से आँख सटाकर उस सितारे को देखती रही। फौलाद का ठंडा स्पर्श आँख पर अच्छा नहीं लगा तो ड्राइंग-रूम में से होकर बाहर बरामदे में आ गयी। आते हुए नज़र पड़ी ड्राइंग-रूम की रोगनी मूर्तियों पर अज़हदे की शक्ल की ऐश-ट्रे पर, वाट सिक्स्टी नाइन की बोतल के बने टेबल लैम्प पर और असमिया मछुओं की टोपी जैसी वाल-प्लेट पर। बत्ती जलते ही ये सब चीज़ें एक साथ चमक उठी थीं।

बरामदे में आकर उसने मुक्ति की साँस ली-उन सब चीज़ों से मुक्ति की। उस सितारे की सीध में पेड़ों और पत्तियों के पीछे काँपता आकाश जैसे उसके अन्दर बहुत गहरे में किसी चीज़ को छू गया। उसने अपने ठंडे चेहरे को हथेलियों से छुआ और बरामदे में पड़ी आराम कुर्सी पर ढीली-सी बैठ गयी। हवा से पत्तियों का काँपना, घास का सरसराना और उँगलियों का सर्द पड़ते जाना उसे ऐसे लगा जैसे कोई कसी हुई गाँठ उसके अन्दर ढीली पड़ रही हो, कोई सोई हुई चीज़ धीरे-धीरे करवट बदल रही हो। उसकी हथेलियाँ गालों से फिसलकर आँखों पर आ गयीं, जिससे ठंडी आँखें कुछ गरमा गयीं, हथेलियाँ कुछ ठंडी पड़ गयीं। फिर उसने चार-चार उँगलियों की नालियों से बाहर देखा, तो लगा कि सितारा लॉन की घास पर उतर आया है-वहाँ से आँख झपकता हुआ उसे ताक रहा है। वह उठी और अपनी रबड़ की चप्पल वहाँ छोड़कर लॉन में उतर गयी। पास जाकर देखा कि शबनम की एक अकेली बूँद उस सितारे को अपने में समेटे है। अँधेरे के बावजूद घास की नमी में सुबह की ताज़गी भर आयी थी। वह अपने तलुओं से उस ताज़गी को पीती हुई चलने लगी। शबनम के कई-कई कतरे शरीर की सिहरा गये। लगा कि घास की महक से सारा शरीर गमक उठा है।

पैर बहुत ठंडे पड़ गये थे, जब पुरवइया के स्पर्श ने शरीर को फिर सिहरा दिया। पूरब में अँधेरे की सतह पर एक हल्की लाल किरण तैर आयी थी। मीरा देखती रही कि कैसे वह लाली उजली होकर सफ़ेद होती है, कैसे रंगों की झिलमिल अँधेरे में धुलती-फैलती अपनी तरफ़ बढ़ती आती है। एकाएक वह अपने मन में चौंक गयी। उसे अहसास हुआ कि पश्चिम का आकाश आज रात गहरा काला रहा है, फौलाद की भट्ठी की ताम्बई लौ वहाँ दिखाई नहीं दी। फौलाद की भट्ठी चौबीसों घंटे सुलगती रही थी, पर उसका आभास मिलता था रात को ही-जब वह साथ आसपास के आकाश को भी सुलगा देती थी। उसे पहली बार उस तरह देखा था, तो लगा था कि जंगल या किसी घर-मोहल्ले में आग लग गयी है। बताये जाने पर भी विश्वास नहीं हुआ था कि वह लौ फौलाद की भट्ठी की है। बाद में धीरे-धीरे ऐसी आदत हो गयी थी कि लगता था उतने हिस्से में आकाश का रंग ही वैसा है। रात के वक़्त ड्राइव से लौटने पर मीलों दूर से आकाश का

चेहरा तमतमाया नज़र आता था। वह रवि से देखने को कहती, तो वह झुँझला उठता, "क्या बच्चों की-सी बातें करती हो? आज फौलाद का युग है। देखना एक दिन पूरे आसमान का रंग बदलकर ऐसा हो जाएगा।" वह कल्पना में सारे आकाश को उस रंग में सुलगते देखती ओर काँप जाती। क्या बिना सितारों के ताम्बई आकाश के नीचे भी ज़िन्दगी उसी तरह जी जाएगी?

यह पहला मौका था जब पच्छिम के आकाश में एक सितारा चमकता दिखाई दिया था। आठ महीने में पहली बार उधर का आकाश ताम्बई नहीं था। उसे आश्चर्य हुआ कि इतनी बड़ी घटना पहले उसके ध्यान में क्यों नहीं आयी? हर रात सुलगता रहने वाला आकाश आज धुएँ की कालिख की तरह निर्जीव था और सुबह की लौ ने अब उसमें हल्की काई निकाल दी थी। उसका मन हुआ कि जाकर रवि से कहे कि उठो, देखो आज फौलाद की भट्ठी बुझ गयी है। पर यह सोचकर उसका उत्साह ठंडा पड़ गया कि रवि शायद यह बात पहले से जानता होगा। वह झुँझलाकर इतना ही कहेगा, "तुम्हें मैंने बतलाया नहीं था कि आज से प्लांट में स्ट्राइक है?" और उसे याद आया कि दिन में किसी वक़्त सचमुच रवि ने प्लांट की स्ट्राइक का ज़िक्र किया था। सुनकर उसने अनमने ढंग से हूँ-हाँ भी किया था जैसे कि उसकी हर बात पर किया करती थी। यह नहीं सोचा था कि स्ट्राइक होने से आसमान से वह रंग भी बुझ जाएगा।

पैर सुन्न हो रहे थे। उसने बरामदे में आकर चप्पल पहनी और कमरे में लौट आयी। रवि तब तक जाग गया था। उसके पास आते ही करवट बदलकर बोला, "शंकर से कहोगी चाय दे जाए?" वह चुपचाप वापस चल दी। जानती थी चाय लाने के लिए उसी से कहा गया है। शंकर इतनी जल्दी नहीं उठता, यह रवि अच्छी तरह जानता था।

नीम की टहनियों पर काँपती सुबह धीरे-धीरे कमरे में उतर आयी। धूप की चकत्तियाँ रोज़ की परिचित जगहों पर छितरा गयीं। सुबह-सुबह कितने ही लोग रवि से मिलने आ गये। मैनेजमेंट का दास चौधरी, पर्सनेल का मुकर्जी और श्रम-विभाग का जे. दारूवाला। शाम को क्लब में मिलनेवाले लोगों का सुबह-सुबह घर आना एक नई-सी बात थी। मीरा ख़ुद किचन में व्यस्त रहकर शंकर के हाथ उन्हें चाय भिजवाती रही। रवि से कोई भी मिलने के लिए आये,किसी भी समय आये, चाय की माँग ज़रूर होती थी। नाश्ते से पहले तीन बार चाय जा चुकी थी, अब चौथी बार ट्रे तैयार हो रही थी। सब लोग ड्राइंग-रूम में थे, पर लगता था जैसे कहीं दूर बैठे बात कर रहे हों। विषय वही था-प्लांट के मज़दूरों की हड़ताल। जे. दारूवाला के हर दिन के मज़ाक उस समय उसकी ज़बान पर नहीं आ रहे थे। हकला भी वह रोज़ से ज़्यादा रहा था। मुकर्जी बहुत कम बात कर रहा था। ज़्यादातर आवाज़ दास चौधरी की ही सुनाई दे रही थी। जब रवि

बोलता, तो उसकी बात में शब्द कम और आँकड़े ज़्यादा होते। आँकड़े, आँकड़े, आँकड़े! क्या बिना आँकड़ों के रवि कोई बात सोच ही नहीं सकता था? मीरा को लगता कि उससे प्यार करते वक़्त भी वह मन-ही-मन चुम्बनों की गिनती करता रहता होगा...तभी तो न उसका आवेश एक चरम पर पहुँचकर एकाएक रुक जाता था।

इस बार चाय की ट्रे वह ख़ुद बाहर ले गयी। उसके आने पर पल-भर के लिए बातचीत रुक गयी। फिर रवि ने ही बात को आगे बढ़ाया, "मुझसे पूछा जाए, तो इसमें बहुत कुछ लंच के मीनू पर निर्भर करता है," उसने कहा।

मीरा एक तरफ़ हटकर बैठ गयी जिससे उसकी उपस्थिति उनकी बातचीत के रास्ते में न आये और प्यालियों में चाय बनाने लगी। रवि की बात पर पहली बार सब लोगों के गले से हँसी फूटी। दारूवाला के सुर्ख़ चेहरे की लकीरें फैल गयीं। "दैट्स इट," उसने कहा, "मेरा तज़ुर्बा भी यही कहता है कि जो काम वैसे बहुत मुश्किल नज़र आते हैं, लंच का मीनू ठीक होने से वे आसान हो जाते हैं।"

मीरा ने प्यालियाँ उन्हें दे दीं। मीनू की बात ने उसके मन में उत्सुकता जगा दी थी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि रवि जो प्लेट में सामने पड़ी चीज़ों को कभी ध्यान से देखता भी नहीं, वह आज कैसे लंच के मीनू में इतनी दिलचस्पी दिखा रहा है!

दास चौधरी ने मीनू बताया, तो रवि उसमें संशोधन करने लगा। मीरा स्थिर दृष्टि से उसके चेहरे की तरफ़ देखती रही। क्या सचमुच रवि रोस्ट मटन और रोस्ट चिकन के अन्तर को महत्त्वपूर्ण समझता था?

वापस किचन में पहुँचने तक वह इतना जान गयी कि मालिकों और मज़दूरों के झगड़े में मध्यस्थता करने के लिए कोई व्यक्ति बाहर से आ रहा है, और दोनों पक्ष अपना-अपना केस आज उसके सामने रखने जा रहे हैं। दोपहर को स्थानीय कांग्रेस के प्रधान के यहाँ उसकी दावत है। उसकी खाने का मीनू इस वक़्त यहाँ तय किया जा रहा है। वह जब वहाँ से उठी, तो रवि कह रहा था, "मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे पता है उसके मेदे को क्या चीज़ मुआफ़िक आती है।"

लोगों के चले जाने के बाद रवि दफ़्तर जाने के लिए तैयार हुआ, तो मीरा ने पूछ लिया, "देखो, आज वहाँ कुछ गड़बड़ तो नहीं होगी?"

"हड़ताल प्लांट में है, दफ़्तर में नहीं," रवि ने कुछ उलझकर कहा, "तुम नाहक परेशान होने लगती हो।"

मीरा पल-भर रवि के ऊँचे डीलडौल को, कसे हुए भूरे सूट और नुकीले जूते को देखती रही। रवि को जब उसने अपने लिए पसन्द किया था, तो उसमें उसका ऊँचा डीलडौल क्या एक बड़ा कारण नहीं था? उन दिनों रवि की ज़बान पर हर वक़्त आँकड़े नहीं रहते थे और वह इतना उलझता भी नहीं था। तब वह एक डिग्री कॉलेज में साधारण लेक्चरर था-स्टील प्लांट में लेबर-एडवाइज़र नहीं।

"यह रंग तुम्हारे जिस्म पर बहुत खिलता है," मीरा ने आँखों की चोरी पकड़ जाने से कहा। रवि के माथे पर हल्की शिकन पड़ गयी। "तुम आज भी उन दिनों जैसी ही बातें करती हो," कहते हुए उसका निचला होंठ ख़ास ढंग से सिकुड़ गया, "इतने साल साथ रहकर भी तुममें ज़रा फ़र्क़ नहीं आया।"

मीरा की आँखें छलछला आयीं। रवि जब ऐसी बात कह देता था, तो वह अपने को उससे बहुत दूर महसूस करती थी। रवि के चेहरे का भाव उस फासले को और भी बढ़ा देता था। उस फासले को भरने की कोशिश उसे एक ऐसा झूठ लगता था जो वह दस साल से लगातार अपने से बोल रही थी। रात-दिन साथ रहकर भी वह फासला कम होने में नहीं आता था। जितना ही वह उसके नज़दीक आती, फासले का एहसास उतना ही ज़्यादा होता था।

चलते वक़्त अपनी फाइलें समेटते हुए रवि ने कहा, "आज मैं लंच के लिए घर नहीं आऊँगा। शुक्ला जी के यहाँ आज राजकृष्ण की दावत है। मुझे भी वहाँ जाना है।"

"राजकृष्ण यहाँ आया है**?**"

"हाँ," रवि घड़ी देखता हुआ दरवाज़े की तरफ़ बढ़ गया, "वह सरकिट हाउस में ठहरा है। हो सके, तो तुम किसी वक़्त उसे फ़ोन कर लेना। नहीं तो वह बुरा मानेगा कि उसके यहाँ होने की बात जानते हुए भी तुमने उससे मिलने या बात करने की कोशिश नहीं की।"

मीरा भी उसके साथ-साथ बरामदे में आ गयी। रवि कार में बैठकर उसे रिवर्स में बाहर ले चला, तो वह वहीं खड़ी उसे देखती रही। कार के निकल जाने पर कच्ची सडक़ की धूल बरामदे की तरफ़ बढ़ आयी। मीरा फिर भी खड़ी रही, जैसे कि धूल में घिर जाना ही उसका उद्देश्य रहा हो।

अज़दहे की शक्ल की ऐश-ट्रे में काफ़ी राख और टुकड़े जमा हो गये थे। रवि किसी बात से उत्तेजित होता था, तो उसके चेहरे से उतना पता नहीं चलता था, जितना उसके

लगातार सिगरेट फूँकने से। पिछले कुछ सालों में उसका सिगरेट पीना लगातार बढ़ता गया था। डॉक्टर का कहना था कि इसका उसकी सेहत पर बुरा असर पड़ रहा है, फिर भी वह सिगरेट पीना कम नहीं कर पाता था। कभी-कभी तो आधी रात को न जाने क्या सोचता हुआ वह बिस्तर से उठ पड़ता था और खिड़की के पास खड़ा लगातार एक के बाद एक सिगरेट फूँकता जाता था।

मीरा ने ऐश-ट्रे उठाकर झाड़ दी। फिर राख लगे हाथों को साबुन से धो लिया। ऐश-ट्रे झाड़ते हुए उसे हमेशा लगता था जैसे वह भुरभुरी राख रवि के व्यक्तित्व का ही एक हिस्सा हो-जैसे लगातार सिगरेट पीने से रवि का शरीर अन्दर से वैसा ही हो गया। उसे रवि से सहानुभूति होती, पर उस सहानुभूति में एक तटस्थता भी रहती। ब्याह से पहले वह जिस तरह रवि के व्यक्तित्व के साथ घुल-मिल जाने की बात सोचा करती थी, उसका आभास भी अब उसे अपने में नहीं मिलता था। अन्तरंग से अन्तरंग क्षणों में भी अपने को रवि से अलग, बिलकुल अलग, पाती थी। कभी उसे लगता कि ऐसा उम्र के बढ़ते सालों की वज़ह से है। पर इससे आगे के सालों की बात सोचकर मन में और टीस जागती। कभी उसे लगता कि इसमें सारा दोष रवि का है। कभी लगता कि दोषी रवि नहीं, वह स्वयं है।

रवि को लंच के लिए घर नहीं आना था, इसलिए उसे खाना बनाने का उत्साह नहीं हो रहा था। बहुत उत्साह पहले भी नहीं होता था, पर रोज़ की बँधी हुई लकीर वक़्त पर उसे गैस के चूल्हे के पास ले जाती थी। शंकर के हाथ का खाना रवि को पसन्द नहीं था; इसलिए दोनों वक़्त का खाना वह अपने हाथ से ही बनाती थी? दो आदमियों का खाना बनाने में देर भी कितनी लगती थी? कभी यह सोचकर भी उसके शरीर में झुरझुरी भर जाती कि इतने सालों से वह हर रोज़ दोनों वक़्त, दो आदिमयों का, सिर्फ़ दो आदमियों का खाना बनाती आ रही है। ज़िन्दगी की यह एकतारता दो-एक बार तभी टूटी थी जब उसकी एबार्शन हुई थी और उसे अस्पताल जाना पड़ा था।

शंकर को उसने दोपहर के लिए छुट्टी दे दी थी, इसलिए उसका पूरा वक़्त ख़ाली ड्राइंग-रूम में अलसाते हुए बीता। तीन बजे के क़रीब शंकर लौटकर आया। उससे पता चला कि प्लांट के बाहर मज़दूरों का बहुत भारी जमघट है। मज़दूर इस तरह बेकाबू हो रहे हैं कि उनके नेताओं के लिए भी उन्हें सँभालना मुश्किल हो रहा है। कोई मिनिस्टर फ़ैसला कराने के लिए बाहर से आये हैं, पर मज़दूरों का एक बहुत बड़ा वर्ग उनकी मध्यस्थता स्वीकार करना नहीं चाहता। नेता लोग उन्हें समझा रहे हैं, पर मज़दूरों का जोश अभी काबू में नहीं है।

मीरा को इस सबमें ख़ास दिलचस्पी नहीं थी। फिर भी अकेलेपन की ऊब को कम करने के लिए वह यह सब सुनती रही। फिर अचानक उसे याद आया कि रवि ने जाते हुए राजकृष्ण को फ़ोन करने के लिए कहा था। उसने वहीं सोफ़े से हाथ लम्बा करके सरकिट हाउस का नम्बर मिलाया। नाम और काम पूछने के बाद उसे बताया गया कि मिनिस्टर साहब अभी-अभी बाहर से लौटकर आये हैं। होल्ड-ऑन करें, तो उनसे पूछ लिया जाए कि वह इस वक़्त बात कर सकेंगे या नहीं। एक मिनट बाद उससे कहा गया कि मिनिस्टर साहब फ़ोन पर हैं, वह बात कर ले। फिर उधर से राजकृष्ण की भारी आवाज़ सुनाई दी, "कहो मीरा, क्या हाल हैं?"

मीरा को समझ नहीं आया कि वह क्या उत्तर दे। बातें सब की सब जैसे एकाएक दिमाग़ से ग़ायब हो गयीं। उसे अजीब लगा कि जिस आदमी के साथ कभी एक ही टीम में वह यूनिवर्सिटी की डिबेटों में हिस्सा लिया करती थी,आज टेलीफ़ोन पर उसकी आवाज़ सुनकर वह एकाएक पथरा क्यों गयी है? उसने कोशिश करके किसी तरह कहा, "रवि ने आज सुबह बताया था कि आप आए हुए हैं...।"

"हाँ, अभी थोड़ी देर पहले एक लंच में रवि से मुलाक़ात हुई थी।" उधर की आवाज़ पहले से भी भारी लगी, "उसने बताया था कि तुम भी यहीं हो और शायद किसी वक़्त फ़ोन करोगी।"

मीरा को अपने अँधेरे दिमाग़ में टटोलते हुए अब भी कुछ कहने को नहीं मिल रहा था। पल-भर के वक़फे के बाद उधर से आवाज़ आयी, "हलो, आर यू ऑन द लाइन?"

"हाँ-हाँ," मीरा बोली, "आप अभी दो-एक दिन रुकेंगे न यहाँ?"

"मुझे रात के प्लेन से चले जाना है," उधर से सुनाई दिया। "मगर उससे पहले किसी वक़्त मिल सको, तो बहुत अच्छा है। इधर चार-पाँच साल से तो तुम्हें देखा ही नहीं है। मैं शाम को खाली हूँ, पाँच और छ: के बीच। चाय तुम यहीं आकर पियो। रवि के पास वक़्त हो, तो उसे भी साथ ले आना।"

रिसीवर रखने के बाद मीरा का हाथ देर तक वहीं रुका रहा। जिस आदमी के साथ कितनी ही बार कॉलेज की कैंटीन में बैठकर चाय पी थी, आज उसी के साथ सरकिट हाउस में चाय पीना इतना अस्वाभाविक क्यों लग रहा था?

पहले से आए हुए लोग अन्दर बात कर रहे थे इसलिए उसे बाहर के कमरे में इन्तज़ार करने को कहा गया। सरकिट हाउस की इमारत उसके लिए अपरिचित नहीं थी।

दो-एक बार पहले भी वह वहाँ आ चुकी थी। पर उस वक़्त वह जगह उसे बेगानी-सी लग रही थी। रोशनदान से झाँकती एक चिडिया जैसे लगातार कोई सवाल पूछ रही थी, "चि-चि-चि-चि-चु-चु-चु-चि-चि...?" लॉन में बिखरी अलसाई धूप फीकी पड़ रही थी। धूप की उदासी उसे अपने तन-मन में समाती-सी लगी, तो अपनी जगह से उठकर वह अलमारी के पास चली गयी। अलमारी में सभी किताबें बहुत पुरानी थीं...अँग्रेज़ों के ज़माने की ख़रीदी हुई। बरसों से शायद किसी ने भी न तो अलमारी को खोला था, न किताबों को छुआ था। जिल्दों का सुनहरा रंग गर्द की परतों से मटियाला हो चला था। चमड़े में सफ़ेदी उभर आयी थी और गत्ते कागज़ों से चिपक गये से लगते थे। सालों की बास जैसे काँच की दीवारें लाँघकर बाहर आ रही थी। वहाँ से हटते हुए उसने दीवार-घड़ी की तरफ़ देखा। दिये गये वक़्त से पन्द्रह मिनट ऊपर हो चुके थे।

"साहब ने कहा है कि अभी पाँच मिनट में बुला रहे हैं," उस दुबले-से व्यक्ति ने आकर कहा जो उसे वहाँ छोड़ गया था, "तब तक आपके लिए ठंडा या गरम कुछ भेजूँ?"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए," मीरा ने अन्यमनस्कता से कहा और अपने में व्यस्त हो रही। "वह खाली हों, तो मुझे पता दे दें।"

दीवारों पर लगी तस्वीरें भी शायद जॉर्ज पंचम के ज़माने की थीं। बिगबेन...सेंट पॉल्ज़...टेम्ज़ का पुल...उसे लगा जैसे उस कमरे में ज़िन्दगी बरसों से एक जगह पर रुकी है...वक़्त को सन् चालीस के मॉडल की दीवार घड़ी ने अपने में बन्द कर रखा है...और टिक्-टिक् की आवाज़ लगातार उस पर पहरा दे रही है।

"आइए, साहब बुला रहे हैं।" दुबले व्यक्ति ने कुछ देर बाद फिर आकर कहा। वह चौंककर उसके साथ चल दी। बरामदे से गुज़रते हुए उसने इस तरह हवा को अन्दर खींचा जैसे जॉर्ज पंचम के ज़माने की सारी गर्द अपने फेफड़ों से बुहार देना चाहती हो।

राजकृष्ण हॉल के उस तरफ़ छोटे कमरे में था। हॉल में से गुज़रते हुए मीरा को लगा कि कितनी ही आँखें एकटक उसे देख रही हैं। न जाने किस-किस काम से कितने-कितने लोग वहाँ आकर बैठे थे। भीड़ में अचानक किसी परिचित व्यक्ति से नज़र न मिल जाए, इसलिए वह आँखें नीची किए रही। छोटे कमरे का दरवाज़ा खुलते ही वह जल्दी से अन्दर चली गयी।

राजकृष्ण ने उसे देखकर हाथ के काग़ज़ मेज़ पर रख दिये और उठकर उसकी तरफ़ बढ़ आया। वही उजला खादी का लिबास जो वह उन दिनों पहना करता था। लम्बे चेहरे

पर वही चमक, वही गोराई। वही आँखें-ऑपरेशन के औज़ारों की तरह तीखी। "आओ, मीरा," उसने कहा, "ज़्यादा देर तो नहीं बैठना पड़ा?"

"ज़्यादा नहीं, सिर्फ़ बीसेक मिनट!" वह मुस्कराई।

"मुझे बहुत अफ़सोस है, पर किया क्या जाए?" राजकृष्ण ने सोफ़े की तरफ़ इशारा कर दिया, "वही स्ट्राइक वाला मामला फँसा हुआ है। लोग किसी भी तरह मानने में नहीं आते। आजकल लेबर के नख़रे इतने बढ़े हुए हैं कि कुछ पूछो नहीं...।"

मीरा बैठ गयी। राजकृष्ण पास आ बैठा। "तुम बहुत दुबली लग रही हो," उससे कहा।

"मैं दुबली लग रही हूँ? नहीं तो..." मीरा ने अपने को थोड़ा समेट लिया। वह इतनी आत्मीयता के लिए तैयार नहीं थी।

"या कहो कि मुझे तुम्हारे उन दिनों के चेहरे की ठीक से याद नहीं रही।"

मीरा अन्दर-ही-अन्दर सकपका गयी। क्या ज़रूरी था कि इस वक़्त उनकी चर्चा की जाए? "कह नहीं सकती," वह कुछ अटकती हुई बोली, "छः-सात साल से वज़न तो मेरा लगभग एक-सा रहा है।"

"मैंने वज़न की बात नहीं कही।"

मीरा को लगा कि राजकृष्ण की आँखें कैंटीन के दिनों की तरह उस वक़्त भी उसकी आँखों से अपने को बचा रही हैं कि वह उसी तरह उन बचती आँखों का पीछा कर रही है-कहीं किसी तरह उन्हें अपनी पकड़ में ले आना चाहती है।

"यूँ मेरा ख़्याल है, देखने में भी मैं अब तक वैसी ही लगती हूँ," उसने कहा।

"अपना चेहरा आईने में देखती हो न?"

मीरा और सकपका गयी, "मुझे तो नहीं लगता कि मुझमें कोई ख़ास फ़र्क़ आया है।"

"हाँ, जिस तरह का फ़र्क़ आना चाहिए, उस तरह का फ़र्क़ नहीं आया।"

मीरा को लगा कि अब राजकृष्ण की आँखें बचने की जगह उसकी आँखों का पीछा कर रही हैं। "मतलब?" उसने पूछ लिया।

"मतलब कुछ नहीं। बस ऐसे ही कह रहा था। शायद इसलिए कि मन में कहीं ख़्याल था कि दो-एक बच्चे-अच्चे हो जाने से अब तक तुम मुटिया गयी होगी।"

मीरा को अपना गला ख़ुश्क होता जान पड़ा। सहसा कोई भी बात उसके होंठों पर नहीं आयी। बैरा तभी चाय की ट्रे लेकर आ गया, इसलिए वह कुछ कहने से बची रही।

लौटकर घर आते ही मीरा ने अपना कमरा अन्दर से बन्द कर लिया। उससे पहले शंकर से कह दिया कि रात का खाना वही बना ले, उसकी तबीयत ठीक नहीं है। यह भी कि साहब आएँ, तो भी उसे न बुलाया जाए-वह कुछ देर सोना चाहती है। मगर कमरा बन्द करके वह लेटी नहीं, पलंग की पीठ पर हाथ रखे काफ़ी देर चुपचाप खड़ी रही।

उसे लग रहा था कि उसके दाँत दर्द कर रहे हैं, माथा दर्द कर रहा है, आँखें दर्द कर रही हैं। गले से नीचे साँस की नली में भी उसे दर्द महसूस हो रहा था। नाभि के दायीं तरफ़ एक गाँठ-सी पड़ गयी लगती थी, जैसे किसी ने उस हिस्से को मुट्ठी में कस लिया हो और ज़ोर से भींच रहा हो। अपने-आप से, सामने बिस्तर पर बिखरे कपड़ों से, और कोने में रवि की टेबल पर रखे काग़ज़ों से जॉर्ज पंचम के ज़माने की चिपचिपी किताबों की बू आ रही थी। लग रहा था कि वह बू उसकी साँसों में और रोम-रोम में समा गयी है। बू के मारे एक चिडिया पंख फडफ़ड़ाती हुई पास ही कहीं तडफ़ रही है-चि-चि-चु-चु-चु-चु-चि...चि-चि-चि-चि।

खिड़की के बाहर शाम गहराकर रात में घुल रही थी। पेड़, पत्ते, घास, सडक़ और सडक़ पर चलते लोग-सब स्याह धूल की परतों में ओझल होते जा रहे थे। हवा से पत्ते सरसराते, तो सारे शरीर पर नाखून-से रेंगने लगते। कच्ची सडक़ पर आती मोहरों की बत्तियाँ दूर से अपने को घूमती हुई लगतीं। मैदान के उस तरफ पुरानी बस्ती के घर ऐसे लग रहे थे जैसे शराब पीकर औंधे पड़े हों। सिर चकरा रहा था और उसे लग रहा था कि अभी उसे कै होने लगेगी।

उसने साड़ी निकाल दी और माथा पकड़ बिस्तर पर बैठ गयी। हर आहट से मन चौंक जाता कि रवि आ गया है और अभी दरवाज़े पर दस्तक देने वाला है। कोशिश करके अपने को समझाना पड़ता कि रवि के आने से पहले बाहर कार का हॉर्न सुनाई देगा, फिर कार अन्दर आकर रुकेगी, फिर दरवाज़ा बन्द होने के साथ रवि की आवाज़ सुनाई देगी, "शंकर!"

हर बार यह विश्वास हो जाने पर कि रवि अभी नहीं आया, मन को कुछ सहारा मिलता। अन्दर और बाहर की हर आहट से वह बची रहना चाहती थी। रवि से, या

किसी से भी, बात करने से पहले वह वक़्त चाहती थी-अभी काफ़ी और वक़्त। इतना कि कम-से-कम उसके बीतने में सुबह हो जाए।

उसका दायाँ हाथ सरककर कन्धे पर आ गया...वहाँ जहाँ राजकृष्ण ने कुछ देर पहले उसे छुआ था। उसे लगा कि राजकृष्ण की गरम साँस अब भी उसके गाल को चुनचुना रही है, उसके होंठों से निकलते शब्द अब भी कानों में लकीरें खींच रहे हैं। "कितनी बार सोचता हूँ, मीरा, कि तब मैंने कितनी ग़लती की थी। ख़ामख़ाह झूठे आदर्शवाद में पडक़र तुम्हें और अपने को छलता रहा कि वह ज़िन्दगी मेरे लिए नहीं है जो तुम मुझे देना चाहती थी..."

राजकृष्ण का हाथ कन्धे से हटाकर, अपने होंठों पर झुके उसके होंठों से बचकर, वह एकाएक उठ खड़ी हुई थी। राजकृष्ण कुछ देर अपनी जगह से हिला नहीं था, वहीं बैठा चुभती नज़र से उसे देखता रहा था। "मेरी बात से तुम्हें चोट पहुँची है?" उसने पूछा था।

तब तक उसने अपने को थोड़ा सँभाल लिया था और मेज़ के सहारे खड़ी होकर बालों की पिनें ठीक कर रही थी।"मुझे अब चलना चाहिए," उसने कहा था, "रवि के आने का वक़्त हो रहा है।"

"रवि को यह पता तो है कि तुम यहाँ आई हो," राजकृष्ण कुछ अटकते स्वर में बोला था, "अभी कुछ देर पहले वह यूनियन के नेताओं के साथ यहीं था। घर पहुँचने में आज उसे काफ़ी देर हो जाएगी।"

"फिर भी मुझे चलना चाहिए," रूमाल से मुँह और माथे का पसीना पोंछते हुए उसने कहा था, "घर पर खाना मैं ख़ुद बनाती हूँ-आज मेरी तबीयत भी कुछ ठीक नहीं है।"

राजकृष्ण अपनी जगह से उठा, तो उसे लगा उसके पैर डर के मारे ज़मीन से चिपक गये हैं। "आज बहुत थका हुआ था," राजकृष्ण ने कहा, "सोचा था, तुम आओगी तो कुछ देर थोड़ा रिलैक्स कर लूँगा। तुम सोच भी नहीं सकतीं कि इस ज़िन्दगी में रात-दिन कितना तनाव मन में रहता है...।"

वह ठीक से सोच भी नहीं पा रही थी कि कब और कैसे राजकृष्ण के होंठ उसके होंठों से आ मिले थे। उसने ज़ोर से चीखना चाहा था, पर गले से आवाज़ नहीं निकली थी। "मुझे जाने दीजिए," सिर्फ़ इतना कहकर और उसकी बाँहों से अपने को अलग करके जल्दी से वह बाहर चली आयी थी। यह ध्यान भी उसे बाद में आया था कि अपना रूमाल और पर्स वह उस कमरे में ही भूल आयी है।

गाँठ कस रही थी और शरीर पसीने से तर-ब-तर हो रहा था। मन हो रहा था कि बाकी कपड़े भी जिस्म से उतार दे और जाकर शॉवर के नीचे खड़ी हो जाए। घंटा-दो घंटे फुहार को अपने ऊपर लेती रहे, जिससे जिस्म का एक-एक हिस्सा, एक-एक मुसाम, सीज जाए और उसमें उस सीजन के अलावा कुछ भी महसूस करने की शक्ति न रहे। साथ ही एक नामालूम-सा डर उसके रोएँ-रोएँ में काँप गया। यह साँस-साँस में उभरती जलन...यह कसती गाँठ में बसा हुआ दर्द...आज तक क्या कभी उसका शरीर पसीने से इस तरह भीगा था?

शरीर सुन्न होता-सा लगा, तो उसने जैसे डर से सिहरकर दरवाज़े की चटखनी खोल दी। ड्राइंग-रूम की बत्ती जल रही थी। जल्दी से उसने शरीर को साड़ी में लपेट लिया। मन में बहत अचम्भा हुआ। रवि कब आया और कब ड्राइंग-रूम में सोफ़े पर लेटकर किताब पढने लगा? फाटक के बाहर गाड़ी का हॉर्न क्यों सुनाई नहीं दिया? अन्दर आकर उसने शंकर को आवाज़ क्यों नहीं दी?

तकिये का सहारा लेकर वह बिस्तर पर लेटने जा रही थी कि रवि के जूते की आवाज़ बहुत पास सुनाई दी। अन्दर आकर भी रवि ने बत्ती नहीं जलाई थी। "कैसी तबीयत है?" उसने बिस्तर पर पास बैठकर पूछा। स्वर में वही उदासीनता थी जिससे वह दस साल से लड़ती आ रही थी। मन में शायद अब भी रवि दफ़्तर की, स्ट्राइक की, आँकड़ों की, बात सोच रहा था।

"ठीक नहीं है," उसने फुसफुसाकर कहा और रवि के कन्धे का सहारा ले लिया। सिर उसका रवि की छाती पर झुक गया।

"डॉक्टर को दिखाना चाहोगी?"

फिर सवाल! पर वह जानती थी कि रवि के किसी सवाल का अर्थ निश्चयात्मक नहीं होता। उसकी साँस तेज़ हो गयी। सिर झुककर रवि की छाती पर और नीचे आ गया और उसके होंठ उसके सीने के बालों को सहलाने लगे।

"मुझे अभी फिर जाना होगा," रवि ने कहा, "राजकृष्ण को एयरपोर्ट पर सी-ऑफ करना है।"

मीरा ने सिर उसकी छाती से हटा लिया और तकिये में मुँह छिपाकर पड़ रही।

"कहो तो पहले डॉक्टर को बुला दूँ?" रवि बात करता रहा, "नहीं तो आते हुए साथ लेता आऊँगा...राजकृष्ण ने मेरे आँकड़ों के आधार पर ही झगड़े का निपटारा किया है...सबसे कहता रहा कि हम लोग बहुत पुराने दोस्त हैं...।"

मीरा ने चादर ओढ़कर जैसे अपने को ओट में कर लिया। "तुम्हें जाना है, जाओ," उसने कहा, "मेरी तबीयत ऐसी ज़्यादा ख़राब नहीं है। तुम्हारे लौटने तक शायद ठीक भी हो जाऊँगी।"

रवि ने उसकी बाँह को हल्के से थपथपा दिया और वहाँ से चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। "बत्ती जला दूँ?" उसने चलते-चलते पूछा।

"नहीं, रहने दो," मीरा ने करवट बदल ली, "ज़रूरत होगी, तो शंकर से कहकर जलवा लूँगी।"

रवि के जूते की आवाज़ ड्राइंग-रूम से होकर बाहर चली गयी। कार का दरवाज़ा खुलकर बन्द हुआ। कार के पहिये कच्ची सडक़ पर दूर तक आवाज़ करते रहे।

मीरा तकिये में सिर छिपाए कल्पना में देखती रही-पहियों के नीचे कुचलती सडक़...व्याकुल होकर पनाह के लिए इधर-उधर चक्कर काटती धूल...पीछे पेड़ों की घनी रेखाएँ...दूर नई बस्ती के घरों की बत्तियाँ...और उसके पीछे फौलाद की भट्ठी का ताम्बई आकाश...स्ट्राइक ख़त्म हो गयी थी। चार दिन में भट्ठी फिर जल उठेगी।

मीरा ने सिर उठाया और तकिये में अपने सिर से बने निशान पर हाथ रखे आकाश में वह जगह ढूँढने लगी जहाँ सुबह-सुबह एक सितारा चमकता देखा था...यह सोचकर उसकी उदासी गहरी हो गयी कि भट्ठी जलने के बाद वह अब फिर वहाँ दिखाई नहीं देगा-कभी, किसी भी सुबह...।

तलुओं में सुबह की घास और शबनम की ठंडक ताज़ा हो आयी। मन हुआ कि कुछ देर फिर उसी तरह घास पर टहले, वहाँ से खुले आकाश को देखे। अभी तीन-चार रातें तो पच्छिम में सितारों की चमक देखी ही जा सकती थी।

साड़ी ठीक से बाँधकर उसने बालों में पिनें फिर से लगायीं। चलते-चलते आईने में अपने पर एक नज़र डाली और बाहर ड्राइंग-रूम में आ गयी। ड्राइंग-रूम उस वक़्त उसे और दिनों से भी खुला और बड़ा लगा। अज़दहे की शक्ल की ऐश-ट्रे में कितनी ही सिगरटें बुझी हुई थीं और वहीं पास में तिपाई पर उसका पर्स और रूमाल रखा था।

इससे पहले कि वह शंकर से पूछती, शंकर ने खुद ही उसे बता दिया, "सरकिट हाउस का चौकीदार ये चीज़ें दे गया था।"

मीरा पल-भर उन चीज़ों को देखती रही। फिर बरामदे से होकर बाहर लॉन में आ गयी, आते हुए शंकर से कह आयी, "देखो, पर्स उठाकर अलमारी में रख दो। और रूमाल...रूमाल को धोबी के कपड़ों में डाल देना।"